Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
Available online at : www.shisrrj.com
OPEN ACCESS
© 2023 SHISRRJ | Volume 6 | Issue 4
ISSN : 2581-6306
doi : https://doi.org/10.32628/SHISRRJ

वैदिक साहित्य में पर्यावरण चेतना

डॉ. विजय कुमार शर्मा
असिस्टेण्ट प्रोफेसर वेद, वेद विभाग, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तर प्रदेश।

Article Info
Publication Issue :
July-August-2023
Volume 6, Issue 4
Page Number : 10-15
Article History
Received : 01 July 2023
Published : 13 July 2023

शोधसारांश
वैदिक काल में जिस प्रकार से मानव प्राकृतिक वातावरण को बिना क्षति पहुँचाए उसके साथ आनन्दमयी जीवन व्यतीत करता था। लेकिन आधुनिक युग में मनुष्य प्रकृति के तत्वों को नुकसान पहुँचाकर वातावरण को प्रदूषित कर रहा है, आने वाले समय में यह वातावरण मनुष्य के रहने के अनुकूल नहीं रह जाएगा। इसलिए हमें अभी से सजग होकर पर्यावरण के प्रति चेतना जागृत करना चाहिए।
मुख्यशब्द–वैदिक, साहित्य, पर्यावरण, मनुष्य,विज्ञान, संस्कृत, वेद।

आज के विज्ञान युग में मानव अपने क्षणिक भौतिक सुखों की प्राप्ति हेतु प्रकृति द्वारा प्रदत्त नैसर्गिक वातावरण को दूषित करता जा रहा है। वह विभिन्न कारखानों की स्थापना करता जा रहा है। उन कारखानों से निकलने वाला औद्योगिक कचरा हमारी प्राणदायिनी नदियों के जल को एवं आस–पास के वातावरण को सतत प्रदुषित करता रहता है। इन कारखानों एवं विभिन्न प्रकार की मोटर, गाडियों तथा विमानों आदि से निकलने वाली तीव्र कर्णभेदी आवाज ध्वनि–प्रदूषण में वृद्धि करती रहती है। अधिक उपज की चाह में रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग के द्वारा लोग पृथ्वी को भी वंध्या करते जा रहे है। आधुनिक वैज्ञानिकों द्वारा निर्मित भौतिक सुख के एक साधन रेफ्रिजरेटर से निकलने वाली गैस से ओजोन परत की क्षय का खतरा उत्पन्न कर दिया है, यह खतरा दिन प्रतिदिन बढता ही जा रहा है। वैज्ञानिकों द्वारा निर्मित आणविक बम ने सृष्टि के विनाश का खतरा पैदा कर दिया है। वस्तुतः आधुनिक वैज्ञानिकों ने हमें इस समय बारूद के ढेर पर बैठा दिया है, यदि इसमें जरा सी भी चिंगारी लग जाये तो सारी दुनिया क्षण मात्र में नष्ट हो जायेगी। इस आधुनिक विद्या को यदि हम पैशाचिक विद्या की संज्ञा दे तो इसमें कोई अत्युक्ति न होगी। इतना ही नहीं आज के जैव वैज्ञानिक जो प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध कृत्रिम रूप से क्लोन आदि विधियों के द्वारा प्रतिरूपों की रचना कर रहें हैं, वह मानव की पैशाचिक प्रवृत्ति का ही उदाहरण है। यही कार्य रक्तबीज आदि राक्षस भी अपनी पैशाचिक (मायावी) विद्या द्वारा स्वयं के अनेक प्रतिरूप तैयार कर लिया करते थे। पूरा भारतीय मंत्रद्रष्टा ऋषियों ने आज से हजारों वर्ष पूर्व सृष्टि के समस्त प्राणियों के कल्याणार्थ पर्यावरण की महत्ता एवं उसको दूषित होने से बचाने, प्रकृति के प्रति संवेदनशील एवं उसके संरक्षण तथा मानव–जीवन में होने वाली व्याधियों तथा उसके स्वास्थ्य के संवर्द्धन के सम्बन्ध में अनेक तत्वों का अन्वेषण किया था। पर्यावरण के सभी बिन्दुओं पर उनकी सजग दृष्टि थी। इन मनीषियों ने समाज में रहने वाले व्यक्तियों का ध्यान पर्यावरण सुरक्षा की तरफ आकृष्ट किया। वैदिक कालीन जन पृथ्वी अर्थात् भूमि के प्रति अत्यन्त श्रद्धा रखते थे। पर्यावरण का संरक्षण उपासना का एक अविभाज्य अंग था। अथर्ववेद के एक मंत्र में वैदिक ऋषि

Copyright © 2023 The Author(s): This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution **4.0 International License (CC BY-NC 4.0)** which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium for non-commercial use provided the original author and source are credited.

पृथ्वी की उपासना करते हुए कहा है कि ''हे पृथ्वी! तुम्हारे गिरि, तुम्हारे हिम से ढँके पर्वत और वन कल्याणकारी हों, भूरी, काली, लाल, विविध रूपों वाली स्थिति, उत्पन्न विस्तृत भूमि पर अजेय अहत और अक्षत मैं अधिष्ठित होऊँ'' –

गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तो अरण्यं ते पृथिवि स्यनोमस्तु।
बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विष्वरूपां ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम्।
अजीतोहतो अक्षतोध्यष्ठां पृथिवीमहम्।।

ऋग्वेद में प्रकृति का मनोहारी चित्रण हुआ है। ऋग्वैदिक काल में प्राकृतिक जीवन को ही सुख शान्ति का आधार माना गया है। किस ऋतु में कैसे रहना चाहिए, क्या–क्या सावधानियाँ बरतनी चाहिए, इन सब का वर्णन ऋग्वेद में मिलता है। मण्डूक सूक्त में ग्रीष्म ऋतु में मण्डूकों के आतप से बचने हेतु तहखानों में छिपने तथा वर्षा ऋतु आने पर बाहर निकलने की सूचना मिलती है। मण्डूक सूक्त के ही एक मंत्र में कहा गया है कि ''नेतृत्व करने वाले ये मेंढक देवताओं के द्वारा बनाए गये विधान की अर्थात् ऋतु आदि के नियमों की रक्षा करते हैं'', और इस प्रकार से बारह मासों वाले वर्षा के ऋतुओं की हिंसा नहीं करते, अर्थात् समस्त ऋतुयें क्रमशः आती रहती हैं। वर्षा के पूर्ण होने पर ग्रीष्म में रहने वाले और गर्मी से संतप्त रहते हुए ये मेंढक बिलों से छुटकारा पाते हैं अर्थात् बिलों से बाहर निकलते हैं–

देवह्वतिं जुगुपुर्द्वादषस्य ऋतुं नरो न प्र मिनन्त्येते।
संवत्सरे प्रावृष्यागतायां तप्ता धर्मो अश्नुवते विसर्गम्।।

वायु, जल, ध्वनि, खाद्य, मिट्टी व सम्पदा संरक्षण आदि की दृष्टि से वेदों में वर्णित पर्यावरण को अनेक वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। वायु की शुद्धता एवं महत्ता पर बल सजीव प्राणियों के लिए स्वच्छ पर्यावरण प्रथम आवश्यक है। प्रकृति (ईश्वर) ने प्राणि जगत् के चारों तरफ वायु का एक घेरा फैला रखा है। बिना वायु (प्राणवायु = ऑक्सीजन) के किसी भी जीव का जीवित रहना असम्भव है। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में सृष्ट्योत्पत्ति की प्रक्रिया में वायु को विराट् पुरुष के प्राण से सम्बद्ध किया गया है –

चन्द्रमा मनसो जातष्चक्षोः सूर्यो अजायत।
मुखादिन्द्रष्चाग्निष्च प्राणाद्वायुरजायत।।

मानव शरीर के भीतर रक्तवाहिनी नलिकाओं में प्रवाहमान रक्त बाहर की तरफ दबाव डालता है। वायुमण्डलीय दबाव इन्हें सन्तुलित करता है, अन्यथा मानव शरीर के भीतर की धमनियां एवं शिरायें फट जायेंगी तथा जीवन का अन्त हो जायेगा। ऋग्वेद के वात सूक्त में वायु को दिव्य–शक्ति सम्पन्न, रूपहीन एवं अनुमेय बताते हुए समस्त भुवन अर्थात् प्राणिमात्र का बीज रूप बताया गया है–

आत्मा देवानां भुवनस्य गर्भो यथावंष चरति देव एषः।
घोषा इदस्य श्रृण्विरे न रूपं तस्मै वाताय हविषा विधेम।।

वायु की शुद्धि नितान्त आवश्यक है। ऋग्वेद में वायु को दो वर्गों में विभक्त किया गया है– 1. शुद्ध वायु जो श्वास लेने योग्य होती है, 2. जीवधारियों के लिए हानिकारक वायु (दूषित वायु)।

द्राविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः।
दक्षं ते अन्य आवातु व्यन्यो वातु यद्रपः।।

अर्थात्– ये दो वायु हैं। प्रथम समुद्र से आने वाला वायु, तथा द्वितीय दूर भूमि पर से आने वाली वायु है। ऋषि प्रकृत मंत्र में कहता है कि ''हे साधक! एक तो तुम्हारे लिए बल को प्राप्त कराती है और एक जो दूषित है, उसे दूर फेंक देती है।'' हमारे प्राचीन मनीषियों को हजारों वर्षों पूर्व यह ज्ञात था कि वायुमण्डल

मात्र एक नहीं अपितु वायु समूहों (गैसों) का मिश्रण है। इनके अलग–अलग गुण एवं अवगुण हैं। इसी वायुमण्डल में प्राणवायु जिसे हम आधुनिक वैज्ञानिक भाषा में ऑक्सीजन कहते हैं, भी सम्मिलित है। यह प्राणवायु हमारे जीवन की रक्षा हेतु अपरिहार्य है।

यददौ वात ते गृहेऽमृतस्य निधिर्हितः।
ततो नो देहि जीवसे।।

अर्थात् इस वायु के गृह (वायुमण्डल) में अमरत्व की जो यह धरोहर अर्थात् प्राणवायु स्थापित है, वह हमारे जीवन के लिए आवश्यक है। शुद्ध वायु कई रोगों हेतु अचूक औषधि का कार्य करती है। आज भी यौगिक क्रियाओं में प्राणायाम, जिसमें शुद्ध वायु को ग्रहण कर अशुद्ध वायु को निकाला जाता है का विशेष महत्व है। इस प्राणायाम से मानव के उदर सम्बन्धी अनेक व्याधियों का अंत हो जाता है। तपेदिक जैसे घातक रोगों के लिए शुद्ध वायु औषधि स्वरूप है। एक ऋग्वैदिक ऋषि ने स्वच्छ वायु की महत्ता बताते हुए कहा है कि –

आ त्वागमं शंतातिभिरथो अरिष्टताभिः।
दक्षं त उग्रमाषारिषं परा यक्ष्मं सुवामि ते।।

अर्थात् हे रोगी मनुष्य! मैं तेरे पास सुखकर और रक्षण के लिए उपस्थित हुआ हूँ। तुम्हारे लिए कल्याणकारी बल को शुद्ध वायु के द्वारा लाता हूँ और तुम्हारे जीर्ण रोगों को दूर करता हूँ। स्वच्छ वायु हृदय रोगों के लिए अमूल्य औषधि है एवं आयु का वर्द्धन करती है –

वात आ वातु भेषजं शंभु मयोभु नो हृदे।
प्र ण आयुँषि तारिषत्।।

जल एवं उसकी स्वच्छता का महत्व : मानव शरीर का लगभग तीन चौथाई भाग जलीय अवयवों से निर्मित है। समस्त जीवधारियों के लिए जल ही जीवन है। प्राचीन विश्व की अधिकांश सभ्यतायें यथा सिन्धु–सभ्यता, मिश्र–सभ्यता आदि नदी–घाटियों में ही विकसित हुई थी। तत्कालीन मनुष्यों को वहाँ नदियों से स्वच्छ जल मिलता था। ये नदियाँ उनके आवागमन की माध्यम थीं। आज भी विश्व के अधिसंख्य समृद्ध शहर नदियों अथवा समुद्र जैसे विशाल जलीय स्रोतों के तट पर ही अवस्थित हैं, परन्तु आज के औद्योगीकरण के युग में शहरों के औद्योगिक कचरा एवं गन्दी नालियों ने पवित्र जलवाहिनी नदियों के जल को प्रदूषित कर दिया है। ये प्रदूषित जल भयंकर बिमारियों के स्रोत हैं, जिसे मानव या पशु–पक्षी ग्रहण करते ही इसकी चपेट में आ जाते हैं। इसके अतिरिक्त आणविक अस्त्रों को इकट्ठा करने की होड में समुद्र में जल के भीतर जो परीक्षणात्मक विस्फोट किये जाते हैं, उनसे भी समुद्र का जल प्रदूषित हो जाता है, जिससे उसमें निवास करने वाले असंख्य प्राणियों को अकाल काल कवलित होना पडता है। ऋग्वैदिक काल में शुद्ध पेय जल की प्राप्ति हेतु गहरे कुए खोदने का भी उल्लेख मिलता है। इस कुए का निर्माण मरुतों ने गौतम ऋषि के लिए किया था–

उर्ध्व ननुद्रेऽवतं त ओजसा दादृहाणं चिदि्बभिदुर्वि पर्वतम्।
धमन्तो वाणं मरुतः सुदानवो मदे सोमस्य रण्यानि चक्रिरे।।

शुद्ध जल मनुष्य को दीर्घ आयु प्रदान करने वाला, प्राण–रक्षक तथा कल्याणकारी है। एक ऋग्वैदिक ऋषि इसी भाव को प्रतिपादित करते हुए कहता है कि, सुखमय जल हमारे अभीष्ट की प्राप्ति के लिए कल्याणकारी हो–

षं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीयते।
शं योरभि स्त्रवन्तु नः।।

अथर्ववेद में जल की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए एक स्थान पर कहा गया है कि ''जल मंगलमय और घी के समान पुष्टिदाता है तथा वही मधुर जलधाराओं का स्रोत भी है। भोजन को पचाने में उपयोगी तीव्र रस है। प्राण और कान्ति, बल और पौरुष देने वाला अमरत्व की ओर ले जाने वाला मूल तत्व है'' –

आपो भद्रा घृतमिदाप आसन्नग्रीषोमौ बिभ्रत्याप इत्ताः।
तीव्रो रसो मधुपृचामरेग आ मा प्राणेन सह वर्चसा गमेत्।।

कृषकों की दृष्टि कृषिकर्म हेतु वर्षा ऋतु में मेघों पर ही लगी रहती है। एक ऋग्वैदिक ऋषि कहते हैं कि ''हे जल! तुम अन्न प्राप्ति हेतु उपयोगी हो। जीवन, नाना प्रकार की औषधियाँ व अन्न तुम पर ही आश्रित हैं। तुम औषधि रूप हो'' –

तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ।
आपो जनयथा च नः।।

ध्वनि–प्रदूषण एवं उसका निदान : तीव्र ध्वनि सिरदर्द, तनाव, अनिद्रा आदि बीमारियों का मूल कारण है। आजकल किसी कार्यक्रम का आयोजन बिना ध्वनि विस्तारक यंत्र के सम्पन्न नहीं होता। जहाँ पर इन यंत्रों के बिना भी कार्य चल सकता है, वहाँ भी इसका प्रयोग अनिवार्य रूप से होता है। संगीत यद्यपि देवोपासना का एक महत्वपूर्ण अंग है, किन्तु खेद का विषय है कि आजकल ध्वनि के साधनों का दुरुपयोग हो रहा है। रेडियों, ट्रांजिस्टर, टेलीवीजन, ध्वनि विस्तारक यंत्र एवं विभिन्न औद्योगिक संस्थानों के शोर सारे दिन कान के परदे फाडते रहते हैं, जिससे कि आगे चलकर श्रवण शक्ति कमजोर हो जाती है। वेदों में स्वास्थ्यगत दृष्टि को ध्यान में रखते हुए तीक्ष्ण ध्वनि से बचने के लिए तथा आपसी वार्ता में धीमा एवं मधुर बोलने के लिए कहा गया है–

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यंचः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया।।

अर्थात्– भाई, भाई से व बहन, बहन से द्वेष न करें। परिवार के सभी लोग एक मत व एकव्रती होकर आपस में शान्ति से भद्र पुरुषों के समान भद्रता से वार्तालाप करें। अथर्ववेद में ऋषि प्रार्थना करते हुए एक मंत्र में कहता है कि ''मेरी जिह्वा से मधुर स्वर निकले। भगवान का भजन, पूजन तथा कीर्तन करते समय मूल में मधुरता हो। मधुरता मेरे कर्म में निश्चयतापूर्वक रहे। मेरे चित्त में मधुरता बनी रहे''–

जिव्हाया अग्रे मधु मे जिव्हामूले मधूलकम्।
ममेदह क्रतावसो मम चित्तमुपायसि।।

खाद्य–प्रदूषण का निरोध :भोजन से हमारे शरीर को उर्जा मिलती है। वैदिक साहित्य में अन्न की अत्यधिक महत्ता का वर्णन किया गया है। मानव एवं अन्य जन्तुओं को ही नहीं देवों को भी भोजन अभीष्ट था। याज्ञिक क्रियाओं में हवि द्वारा अर्पित यज्ञान्न अग्नि द्वारा देवताओं के पास ले जाया जाता था–

अग्ने यं यज्ञमध्वरं विष्वतः परिभूरसि।
स इद्देवेषु गच्छति।।

ऋग्वेद के प्रथम सूक्त में सर्वप्रथम उत्पन्न सहस्रशीर्ष एवं सहस्रपाद वाले आदि पुरुष को भी अन्न से वृद्धि प्राप्त करने वाला कहा गया है–

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्।
उतामृतत्वस्येषानो यदन्नेनातिरोहति।।

वैदिक साहित्य में खाद्य–सामग्री के सम्बन्ध में वैज्ञानिक आधार पर निष्कर्षों का प्रतिपादन किया है। अथर्ववेद में उल्लेख मिलता है कि मनुष्य पाचन शक्ति से भोजन को भली–भाँति पचाये। इसी तरह दूध जल आदि पेय पदार्थों के बारे में भी उल्लेख है–

यत् पिबामि सं पिबामि समुद्र इव संपिबः।
प्राणानमुष्य संपास सं पिबामो अमुं वयम्।।

अर्थात् मैं जो भी पीता हूँ, यथाविधि पीता हूँ, जैसे यथाविधि पीनेवाला समुद्र पचा लेता है। हम दूध, जल जैसे पेय पदार्थों को उचित ढंग से ही पिया करें। खाद्य सामग्री के बारे में अथर्ववेद में आगे उल्लेख है कि, जैसे यथाविधि खाने वाला समुद्र सब कुछ पचा लेता है, हम भी उसी तरह यथाविधि शान्तिपूर्वक खूब चबा–चबाकर खायें–

यद् गिरामि सं गिरामि समुद्र इव संगिरः।
प्राणानमुष्य संगीर्य सं गिरामो अमुं वयम्।।

मृदा (पृथ्वी) के प्रदुषण का निवारण : अथर्ववेदीय पृथ्वीसूक्त के कुल ६३ मंत्रों में पृथ्वी की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है। इस सूक्त में पृथ्वी को सभी भौतिक वस्तुओं को धारण करने वाली और बल प्रदान करने वाली माता के रूप में प्रशंसा कर उससे सुख और शान्ति प्रदान करने की प्रार्थना की गयी है। इस सूक्त में सर्वाधिक उल्लेखनीय पृथ्वी का माता के रूप में वर्णन है। अत्यन्त श्रद्धा और स्नेहपूर्ण भाव से ऋषि ने बार–बार पृथ्वी से उसी प्रकार शक्ति, तेज और अन्न की प्रार्थना की है। जैसे– पुत्र अपनी वत्सला माता से करता है–

'सा नो भूमिं विसृजतां माता पुत्राय मे पयः।'
'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।।'

पृथ्वी के निर्माण के बारें में अथर्ववेद में कहा गया है कि –

षिला भूमिरष्मा पांसुः सा भूमिः संधृता धृता।
तस्यै हिरण्यवक्षये पृथिव्या अकरं नमः।।

अर्थात् भूमि चट्टान, पत्थर और मिट्टी है। मैं उसी हिरण्यगर्भा पृथ्वी के लिए स्वागत वचन बोलता हूँ। नाना प्रकार के फल–फूल औषधियाँ एवं वनस्पतियाँ इसी मिट्टी पर उत्पन्न होते हैं। पृथ्वी सभी वनस्पतियों की माता एवं मेघ (पर्जन्य) पिता है–

यस्यामन्न व्रीहियवौ यस्या इमाः पंच कृष्टयः।
भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे।।13.

पृथ्वी वनस्पतियों को जन्म देती है, इसलिए वह माता है। पर्जन्य (मेघ) वर्षा द्वारा उसे सींच कर उसका पोषण करता है, इसलिए वह पिता का कार्य करता है।

अतः स्पष्ट हैं कि वैदिक काल में जिस प्रकार से मानव प्राकृतिक वातावरण को बिना क्षति पहुँचाए उसके साथ आनन्दमयी जीवन व्यतीत करता था। लेकिन आधुनिक युग में मनुष्य प्रकृति के तत्वों को नुकसान पहुँचाकर वातावरण को प्रदूषित कर रहा है, आने वाले समय में यह वातावरण मनुष्य के रहने के अनुकूल नहीं रह जाएगा। इसलिए हमें अभी से सजग होकर पर्यावरण के प्रति चेतना जागृत करना चाहिए।

संदर्भ ग्रन्थ सूची –

1. ऋग्वेद : ७.१०३.८१।।
2. ऋग्वेद : ७.१०३.६।।
3. ऋग्वेद : १०.६०.१३।।
4. ऋग्वेद : १०.१६८.४।।
5. ऋग्वेद : १.८५.८।।
6. ऋग्वेद : ३.१३.५।।
7. अथर्ववेद : ३.३०.३ ।।
8. अथर्ववेद : १.३४.२ ।।
9. अथर्ववेद : ६.१३५.२ ।।
10. अथर्ववेद : ६.१३५.३ ।।
11. अथर्ववेद : १२.१.२६ ।।
12. ऋग्वेद : १.१.४।।
13. ऋग्वेद : १०.६०.२।।